|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

1/4 (श्लोक 1-10), रविवार, 26 जनवरी 2025

विवेचक: G□ T□ VRAT□ JANHAVI JI DEKHANE

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/8daOX8Ggk3Q

योगी के लक्षण

सुमधुर प्रार्थना, देश भक्ति गीत, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन, प्रारम्भिक प्रार्थना एवं गुरु वन्दना के साथ आज का सत्र आरम्भ हुआ।
आज हम गणतन्त्र दिवस मना रहे हैं। आज के दिन हमारा संविधान लागू हुआ था।

जैसे धर्म का अर्थ है हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं?
संविधान का अर्थ है देश को आगे बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? इसी नियमावली को संविधान कहते हैं।

भारत ही विश्व का एकमात्र सबसे बड़ा गणतन्त्र राष्ट्र है।

हमें पता है कि प्रयागराज में महाकुम्भ का आयोजन हो रहा है। दुनिया भर के अलग-अलग प्रान्त से सन्त, महात्मा, भक्त वहाँ एकत्रित हो रहे हैं।
हिमालय की कन्दराओं से निकलकर साधु-सन्त प्रयाग में कुम्भ स्नान के लिए एकत्रित हो रहे हैं। देखा जाए तो गणतन्त्र दिवस हो या कुम्भ मेला, हर जगह पर हम भारत में विविधता में एकता के दर्शन कर रहे हैं। कुम्भ के माध्यम से सारे विश्व में बन्धुत्व का सन्देश पहुँच रहा है।

स्वामी जी का ध्येय वाक्य है "हर कर गीता हर घर गीता"। "गीता पढ़ें, पढ़ाएँ और जीवन में लाएँ"।

एक तरह से हमारा भी त्रिवेणी सङ्गम हो गया है। सुबह सवेरे हमने गणतन्त्र दिवस मनाया, फिर कुम्भ के दर्शन किए और अब विवेचन सत्र के माध्यम से हर घर गीता, हर कर गीता अपना रहे हैं।

जैसे कुम्भ में गङ्गा, जमुना और सरस्वती जी का त्रिवेणी सङ्गम होता है। उसी प्रकार हमारे भी ज्ञान का त्रिवेणी सङ्गम हो रहा है।

पाँचवें अध्याय में श्रीभगवान ने हमें योगी के बारे में बताया कि योगी किस प्रकार के होते हैं। योगी श्रीभगवान के साथ हर पल हर क्षण अपना जुड़ाव बनाए रखते हैं। यह ब्रह्म ज्ञान की बात है इसलिए श्रीभगवान अर्जुन को धीरे-धीरे यह ज्ञान उपलब्ध करा

रहे हैं। हमारे साथ भी ऐसा होता है न कि यदि हम एक ही दिन में बहुत सारी पढ़ाई कर लें तो ऐसा लगता है कि बहुत अधिक हो गया।

श्रीभगवान ने हमें पहले बताया कि आत्मा कैसी होती है?
फिर चौथे अध्याय में उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे सारे जन्मों को जानता हूँ। क्योंकि वे स्वयं ब्रह्म ही हैं। पाँचवें अध्याय में हमें श्रीभगवान ने बताया कि ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा। छठवें अध्याय में वे हमें व्यवहारिक बातें बता रहे हैं, ताकि हम जैसे सामान्य लोग भी योगी बन सकें।

बच्चों से पूछा गया-
प्रश्न -इस अध्याय का क्या नाम है?
उत्तर -इस अध्याय का नाम आत्मसंयमयोग है।

प्रश्न-इस अध्याय में कुल कितने श्लोक है?
उत्तर - इस अध्याय में सैंतालीस श्लोक है।

6.1

श्रीभगवानुवाच
अनाश्रितः(ख्) कर्मफलं(ङ्), कार्यं(ङ्) कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च, न निरग्निर्न चाक्रियः॥1॥

श्रीभगवान् बोले -- कर्मफल का आश्रय न लेकर जो कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी तथा योगी है; (और) केवल अग्नि का त्याग करने वाला (संन्यासी) नहीं होता तथा (केवल) क्रियाओं का त्याग करने वाला (योगी) नहीं होता।

विवेचन- यहाँ पर श्रीभगवान अर्जुन के प्रश्न पूछने की प्रतीक्षा नहीं कर रहे हैं। योगी कैसे होते हैं, इसकी जानकारी वे स्वयं दे रहे हैं। योगी कौन हैं और संन्यासी कौन होते हैं? हम संन्यासी का अर्थ यह समझते हैं, वे जिन्होंने भगवे कपड़े पहन लिए। घर छोड़ दिया, संन्यास की दीक्षा ले ली।

बच्चों से पूछा गया कि संन्यासी कौन होते हैं?

रिया दीदी ने बताया कि हम भी संन्यासी हो सकते हैं यदि हम ध्यान और पूजा पूरे मन से और श्रद्धा से करें। हम सभी संन्यासी हो सकते हैं। इसके लिए हमें हमारी मानसिकता वैसी बनानी होगी। योगी और संन्यासी एक ही हैं।

जब हम कर्म फल के चिन्तन का त्याग करते हैं कि मैंने यह कार्य किया तो उसके बदले मुझे क्या मिलेगा? तो हम भी संन्यासी हो जाते हैं।

कर्म फल की चिन्ता छोड़कर जो कार्य करते हैं वहीं संन्यासी होते हैं।

कर्म और कार्य में क्या अन्तर है?
हम बैठे हैं, देख रहे हैं, हाथ-पैर हिला रहे हैं, ये सब भी कर्म ही हैं। कार्य का अर्थ होता है किसी योग्य विचार के अनुसार काम करें।

यह श्लोक सभी जानते हैं।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

हम सर्व कर्मेषु सर्वदा नहीं बोलते। हम सर्व कार्येषु सर्वदा कहते हैं। हम श्रीगणेश जी से प्रार्थना करते हैं कि सारे कार्य बिना रुकावट के, निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करें।

अच्छे कर्म को ही कार्य कहा जाता है।

योगी और संन्यासी कर्म के फल से अपना ध्यान हटाकर अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करते है।

6.2

यं(म्) सन्न्यासमिति प्राहु:(र्), योगं(न्) तं(म्) विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो, योगी भवति कश्चन॥2॥

हे अर्जुन ! (लोग) जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसी को (तुम) योग समझो; क्योंकि संकल्पों का त्याग किये बिना (मनुष्य) कोई-सा (भी) योगी नहीं हो सकता।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि जिसने सङ्कल्प का त्याग कभी नहीं किया वह योगी नहीं बन सकता। हमने नए वर्ष में अनेक सङ्कल्प लिए हैं, यदि उनका त्याग कर दिया तो हम योगी बन जाएँगे।

यहाँ पर सङ्कल्प का अर्थ अलग है। जब हम अपने छोटे-छोटे सङ्कल्पों को पूरा करेंगे, तभी हम जीवन में कुछ बड़ा कर पाएँगे। यह वस्तु मेरे लिए अच्छी है। यह हमने मान लिया तो यह हो गया सङ्कल्प। कोई पुस्तक है या पेन (कलम) है वह हमें पसन्द आ गया तो उसे प्राप्त करने की जो इच्छा होती है वह है सङ्कल्प।

सङ्कल्प के कारण हमारे मन में अलग-अलग इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं।

इस बार आपने सङ्कल्प लिया है कि मुझे परीक्षा में नब्बे प्रतिशत अङ्क लाने ही हैं। इसके लिए यह निश्चित करेंगे कि मैं कितने घण्टे पढ़ाई करूँगी, कितने घण्टे खेलूँगी। ध्येय निश्चित हो गया है। आपके मित्र बुलाएं कि आ जाओ थोड़ी देर खेलेंगे, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। तो आप कहेंगे मैंने एक घण्टा खेल लिया, अब मैं इससे ज्यादा नहीं खेल सकती।
आपको कोई भी बात अच्छी लग रही है किन्तु वह आपके ध्येय तक पहुँचने में रुकावट बन रही है। ऐसे में आप उनको न बोलने की शक्ति रखेंगे। ऐसा ही व्यक्ति आगे जाकर योगी बन सकता है।

जब हमारे मन में यह निश्चय हो गया कि मुझे परीक्षा के लिए पढ़ाई करनी है तो छोटे-छोटे सङ्कल्प अपने आप ही छूट जाते हैं। जैसे पार्टी में जाना, खेलना, टीवी देखना इत्यादि। इन बातों से अपना मन हटने लगेगा और पढ़ाई में मन लगने लगेगा क्योंकि हमने दृढ़ निश्चय कर लिया है।

जो ब्रह्म योगी हैं, उन्हें तो कितना ऊँचा स्तर का ध्येय मिल गया है कि मुझे ईश्वर को प्राप्त करना ही है। ईश्वर से एक रूप होना ही है।

मनुष्य में दो प्रकार के गुण होते हैं : आसुरी और दैवीय।

चार प्रकार के भक्त होते हैं। अर्थार्थी, आर्त, ज्ञानी और जिज्ञासु,।

अगले श्लोक में योगी होने की दो श्रेणियाँ बताई गई हैं।

6.3

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं(ङ्), कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः(ख्) कारणमुच्यते॥3॥

जो योग (समता) में आरूढ़ होना चाहता है, (ऐसे) मननशील योगी के लिये कर्तव्य कर्म करना कारण कहा गया है (और) उसी योगारूढ़ मनुष्य का शम (शान्ति) (परमात्म प्राप्ति) में कारण कहा गया है।

विवेचन- पहली पङ्क्ति में श्रीभगवान ने एक श्रेणी बताई **आरुरुक्ष**
दूसरी पङ्क्ति में एक और श्रेणी बता दी **योगारूढ़**।

जिसको योगी बनना है पहले उसको आरुरुक्ष बनना होगा। यदि मुझे मेरे जीवन में कुछ अच्छा बदलाव लाना है तो पहले यह विचार करना होगा कि मुझे अपने जीवन में उन्नति करनी है, कुछ लक्ष्य प्राप्त करना है, सकारात्मकता लानी है।

आरुरुक्ष होना हमारी मन:स्थिति हो गई और उसके बाद साधना करते-करते जब हम योगी बन जाएँगे, योग में स्थित हो जाएँगे तो उसे कहते हैं योगारुढ़। योग पर आरुढ़।

योगी उसी स्थान पर ही रहेंगे, उससे नीचे नहीं आएँगे। ऋषि-मुनि जो चिन्तन करते हैं, मनन करते हैं, उनके लिए कर्म साधन है। कर्म के बिना जीवन में उन्नति नहीं है। हम कोई न कोई कर्म करते ही रहते हैं।

हमने कर्म के बारे में पहले के अध्याय में पढ़ा है। **कर्म तीन प्रकार के होते हैं: सात्त्विक कर्म, राजसिक कर्म और तामसिक कर्म।**

योगी आत्म केन्द्रित होते हैं। वे यह नहीं सोचते कि मैं यह काम करूँगा तो इसका फल मुझे क्या मिलेगा? योगियों का विचार या कर्म इस भावना से होता है कि यह कर्म श्रीभगवान को पसन्द आ रहा होगा या नहीं।

हम मन्दिर जाते हैं। श्रीभगवान के दर्शन करते हैं, पूजा करने के बाद प्रदिक्षणा करते हैं। हमें मन्दिर जाने का प्रयास करना चाहिए। प्रतिदिन मन्दिर में जाने का नियम बनाना चाहिए क्योंकि वहाँ की ऊर्जा सामूहिक ऊर्जा होती है।

प्रदिक्षणा, इस बात का प्रतीक होती है कि हम श्रीभगवान को बीच में केन्द्रित करते हुए (प्रदिक्षणा) परिक्रमा कर हैं।

कर्मकाण्ड में जो भी कार्य या कर्म हम करते हैं, उनका एक सामान्य अर्थ होता है और एक गुप्त अर्थ भी होता है। इसका सूक्ष्म अर्थ है कि जो भी कार्य हम श्रीभगवान को केन्द्रित करके करेंगे तो हम उस कर्म से चिपकेंगे नहीं। न ही हमें उसकी सफलता पर प्रसन्नता होगी और न ही असफलता पर क्लेश होगा।

ऐसे व्यक्ति जब एक बार योग की स्थिति में पहुँच गए फिर उनके मन में कोई चञ्चलता नहीं रहती। फिर उनका मन शान्त हो जाता है। वे शान्त चित्त हो जाते हैं। हमारे प्रधानमन्त्री जी भी योगी ही हैं। चुनाव के दौरान उन्होंने सारे कार्य मन लगाकर बड़े परिश्रम से किये। वे हो गए आरुरुक्ष।
प्रधानमन्त्री जी ने सारे कार्य किए और फिर कन्या कुमारी में जाकर तीन दिनों तक साधना की।

हमारे साथ भी ऐसा ही होता है। पढ़ाई अच्छे से करते हैं किन्तु परीक्षा फल कैसा आएगा उसकी चिन्ता में लग जाते हैं। जब तक पेपर समाप्त नहीं होते, तब तक पेपर कैसे जाएँगे, यह चिन्ता होती है। जब तक परीक्षा परिणाम नहीं आते, परिणाम की चिन्ता होती है।

कर्म करने की एक सीमा है, वहाँ तक कर्म करना चाहिए। उसके बाद शान्त चित्त हो जाना चाहिए।

कर्म करने में चूकना नहीं चाहिए और उसके फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

हम कैसे जानेंगे कि यह व्यक्ति योगारूढ़ है? यह अगले श्लोक में बताया गया है।

6.4

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु, न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढस्तदोच्यते॥4॥

कारण कि जिस समय न इन्द्रियों के भोगों में (तथा) न कर्मों में (ही) आसक्त होता है, उस समय (वह) सम्पूर्ण संकल्पों का त्यागी मनुष्य योगारूढ़ कहा जाता है।

विवेचन - योगारुढ़ तभी हो सकते हैं जब सभी सङ्कल्पों से संन्यास ले लिया जाए।

यह बात मेरे लिए अच्छी है, जिसके मन से इस प्रकार के सारे सङ्कल्प निकल जाते हैं, वह **योगारुढ़ होता है**। एक बार यह बात पता चल जाती है कि श्रीभगवान को प्राप्त करना है तो उसके बाद तो दूसरे छोटे-छोटे सङ्कल्प मन से निकल जाते हैं।

हमारी पाँच इन्द्रियाँ है: आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा। शरीर के लिए भोजन अवश्यक है वैसे ही पञ्च इन्द्रियों के भी भोजन होते हैं।

कानों का आहार है शब्द।
आँखों का आहार है देखना, रूप, ठाकुर जी का सुन्दर रूप देखने में कितना आनन्द आता है।
जीभ को अच्छा-अच्छा भोजन प्रिय है।
नासिका को सुगन्ध प्रिय है।
त्वचा का भोजन है स्पर्श। फूलों की कोमलता त्वचा को अच्छी लगती है। काँटों की चुभन अच्छी नहीं लगती।

योगियों की इन्द्रियों के विषय में आसक्ति नहीं होती। उनकी ध्यान में एकाग्रता पूर्ण रूप से होती है।

स्वामी विवेकानन्द जी को बचपन से ही ध्यान करने का अभ्यास था। ध्यान में उनकी रुचि थी। हम तो एक मिनट के लिए भी एकाग्रचित होकर ध्यान नहीं कर पाते। संन्यास लेने से पूर्व उनका नाम था नरेन्द्र।

एक बार की बात है जब वे ध्यान कर रहे थे, उनके बाजू में आकर साँप बैठ गया। उन्हें उस बात की भनक भी नहीं पड़ी। उनको उस बात का पता नहीं चला। उनके आसपास जो बच्चे खेल रहे थे वे डर गए। वे चिल्लाए नरेन्द्र उठो, साँप है, साँप है। स्वामी जी तो ध्यान में मग्न थे। बच्चे घर जाकर उनकी माता जी को बुलाकर लाए।

यहाँ मुख्य बात यह है कि ध्यान में ऐसी एकाग्रता होनी चाहिए। ध्यान में इतने मग्न हो जाते हैं कि दूसरी इन्द्रियों की आसक्ति नहीं रहती।

ऐसी ही एकाग्रता के बारे में श्रीभगवान श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से अर्जुन व हम सबको बता रहे हैं।

श्रीभगवान तो अन्तर्यामी हैं। वे सभी के मनोभावों को जानते हैं। अर्जुन के मन में भी यही भाव या विचार आ रहे थे कि इन्द्रियों को कैसे वश में किया जाए?

6.5

उद्धरेदात्मनात्मानं(न्), नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु:(र्), आत्मैव रिपुरात्मनः ॥5॥

अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि आप ही अपना मित्र है (और) आप ही अपना शत्रु है।

विवेचन - यह श्रीमद्भगवद्गीता का यह एक महत्त्वपूर्ण श्लोक है। हमें जीवन भर इसे ध्यान में रखना चाहिए।

आत्मन का अर्थ है कि आप स्वयं अपने शत्रु हैं और स्वयं अपने मित्र हैं। !

योगी को यह ताकत उनके मन की दृढ़ इच्छा देती है। बारहवें अध्याय में भी कहा गया था, "**सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।"**

उत्तम भक्त का गुण है दृढ़ निश्चय। दृढ़ निश्चय ही हमें शक्ति देता है। हम स्वयं ही स्वयं का उद्धार कर सकते हैं। हम बहुत बार यह सोचते हैं और कहते हैं यह मुझसे नहीं हो पाएगा। मैं नहीं कर सकती। ऐसा नहीं करना है। हमें स्वयं को ही प्रेरित करते रहना चाहिए कि मैं कर सकता हूँ या कर सकती हूँ। हम पहले से ही यह सोचने लगते हैं कि यह हमसे नहीं होगा, हम नहीं कर पाएँगे तो फिर कैसे होगा।

स्वयं का अवमूल्यन नहीं करना चाहिए। अगर हम बोलते रहेंगे, नहीं होगा, नहीं आएगा तो हमारी बुद्धि भी यह बात सुनती है। बुद्धि समझती है कि इन्हें तो मुझ पर विश्वास नहीं है तो मैं भी इनकी सहायता नहीं करूँगी।

मधुमक्खी का शरीर तो बड़ा होता है लेकिन उनके पँख बहुत छोटे होते हैं फिर भी वह उड़ पाती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो उनके परों में उतनी शक्ति नहीं होती है जितना उनके शरीर का वजन होता है।

शारीरिक क्षमता न हो पर दृढ़ निश्चय हो तो भी कार्य सम्भव किया जा सकता है।

मित्र वे होते हैं जिनके साथ हम अच्छा बर्ताव करते हैं तो वे भी हमारे साथ अच्छा बर्ताव करते हैं या व्यवहार करते हैं। हमारा उनके साथ समानता का सम्बन्ध होता है। (**Friendship is a Give and take Relationship)**

श्रीभगवान कहते हैं आप अपने स्वयं के बन्धु हैं। आप ही अपने शत्रु भी हैं। हमने निश्चय कर लिया है कि हमें अच्छे अंङ्क लाने हैं। उसके बाद घण्टो तक सोते रहे या खेलते रहे तो हम अपने स्वयं के ही शत्रु हुए।

6.6

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥6॥

जिसने अपने आप से अपने आपको जीत लिया है, उसके लिये आप ही अपना बन्धु है और जिसने अपने आपको नहीं जीता है, ऐसे अनात्मा का आत्मा ही शत्रुता में शत्रु की तरह बर्ताव करता है।

विवेचन -हमारी अन्तरात्मा है और इस अन्तरात्मा के साथ-साथ जो परमात्मा, हैं वे हमारे मन में बसते हैं। वे हमारे बन्धु के समान हैं। वे हर बार हमें मन में कुछ न कुछ बताते ही रहते हैं।

हमें पता होता है कि यह बात गलत है। हमें यह नहीं करना चाहिए तो यह हमें कैसे पता चलता है? हमें पता है यह बात गलत है, यह बात सही है तो हम दृढ़ निश्चयात्मक कैसे रहें?

कई बार ऐसा होता है न कि हमें पता है परीक्षा है, पढ़ाई करनी है और मन होता है कि हम थोड़ी देर टीवी देख लें, खेल लें। ऐसा जब मन में आता है तो क्या होता है? मन से आवाज आती है।

एक अङ्ग्रेजी की कविता है-

There is a voice inside of you
that whispers all day long
I feel that is right for me
I know that is wrong
No teacher, Preacher, friends, parents or vice man
can decide
just listen to the voice that speaks inside you.

हमारे अन्दर एक आवाज है, जो हमें गलत और सही की राह दिखाती है। संसार का कोई भी मित्र, जानकार व्यक्ति या हमारे अभिभावक हमें वह नहीं बता सकते जो वह भीतर की आवाज बताती है। हमें उसकी बात सुननी चाहिए

बहुत से लोग **अनात्मक** होते हैं, जो अपने मन की, बुद्धि की और अन्तरात्मा की बात नहीं सुनते और इन्द्रियों के पीछे-पीछे भागते रहते हैं।
हमें अपने अन्तरात्मा में बैठे हुए श्रीभगवान की बात सुननी चाहिए। तभी हम अपनी इन्द्रियों को जीत पाएँगे।

इन्द्रियों को जीतकर क्या होगा? इन्द्रियों को क्यों जीतना है? क्यों न हम मौज-मस्ती करें? इसका उत्तर हमें अगले श्लोक में मिलेगा।

मन शेर है पर जब मन इन्द्रियों के वश में हो जाता है तो वह बिल्ली बन जाता है।

6.7

जितात्मनः(फ्) प्रशान्तस्य, परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा मानापमानयोः॥7॥

जिसने अपने-आप पर अपनी विजय कर ली है, उस शीत-उष्ण (अनुकूलता-प्रतिकूलता) सुख-दुःख तथा मान-अपमान में निर्विकार मनुष्य को परमात्मा नित्य प्राप्त हैं।

विवेचन - जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली, वह प्रशान्त हो जाता है, उसका मन शान्त रहने लगता है। इन्द्रियों के कारण ही हमारा मन चञ्चल होता है। हमें अपने ध्येय पर मन केन्द्रित करना चाहिए।

यह पूरा अध्याय आत्म संयम के बारे में ही है। जो कार्य करना है उसे अच्छे से कर पाएँ। हमने निश्चय किया कि मैं दो अध्याय रोज, प्रतिदिन पढ़ूँगी और कहते हैं, समय ही नहीं मिला। क्या हमने टीवी नहीं देखा? भोजन नहीं किया? खेले नहीं? सोए भी हैं। हमें देखना चाहिए कि हमने कहाँ समय बर्बाद किया? हमारा समय बर्बाद होने से बच जाएगा जब हम अपनी इन्द्रियों को जीत लेंगे।

श्रीभगवान योगी पुरुष के विषय में कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति जो शान्त चित्त होते हैं, उनका योग श्रीभगवान के साथ होता है।उनके साथ श्रीभगवान हर पल होते हैं। यह बात मन में पक्की बैठ गई कि मुझे श्रीभगवान का कार्य ही करना है। उन्हें पता है कि श्रीभगवान ही मेरे मित्र है। श्रीभगवान ही मेरे बन्धु है वही मेरी सहायता करेंगे।
'

योगक्षेमं वहाम्यहम्

योगी जानता है कि मेरा योग और क्षेम श्रीभगवान स्वयं ही सम्भाल रहे हैं। कभी-कभी होता है न कि हमने अच्छे से पढ़ाई की और अङ्क उतने नहीं आए तो हम अवसाद में चले जाते हैं। योगी श्रीभगवान में अत्यन्त निष्ठा रखते हैं। अपने मन को इन्द्रियों के

पीछे भागने नहीं देते। वे इन बातों से परे हो जाते हैं। कोई भी बात उन्हें डिगा नहीं सकती। मान-अपमान हो, शीत हो, उष्ण हो या फिर चाहे सुख-दुख हो। वे हर परिस्थिति में समान रहते हैं।

6.8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥8॥

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूट की तरह निर्विकार है, जितेन्द्रिय है (और) मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा स्वर्ण में समबुद्धि वाला है - ऐसा योगी युक्त (योगारूढ़) कहा जाता है।

विवेचन- जिस प्रकार हमने पिछले श्लोक में देखा, शीत-उष्ण, मान-अपमान उनके लिए समान होते हैं।

उसी प्रकार यहाँ भी श्रीभगवान एक और उपमा दे रहे हैं- "**समलोष्टाश्मकांचनः**"।

लोष्ट का अर्थ है मिट्टी का ढेला, **अश्म** का अर्थ है पत्थर और **कांचनः** का अर्थ है स्वर्ण। श्रीभगवान कह रहे हैं कि इन तीनों में भी उसे कोई भेद दिखाई नहीं देता है क्योंकि उसे पता है कि मेरे परमात्मा ही सब जगह हैं।
जैसे प्रह्लाद से उसके पिता ने पूछा था कि "क्या तुम्हारे परमात्मा इस स्तम्भ में हैं?" प्रह्लाद ने कहा कि "हाँ हैं!" क्योंकि प्रह्लाद जी ने भी योगी वाली मनःस्थिति (psychological state) प्राप्त कर ली थी। उन्हें पता है कि मेरे परमात्मा हर पल मेरे साथ हैं।

श्रीभगवान को भी ऐसे योगियों की बात सुनने के लिए वैसे-वैसे ही कार्य करने पड़ते हैं। जब प्रह्लाद जी ने बोला कि "हाँ! वे इस स्तम्भ में हैं।" तब श्रीभगवान नृसिंह को उस स्तम्भ से ही प्रकट होना पड़ा।

श्रीभगवान अपने भक्तों के प्रति बहुत दयालु होते हैं। आप यदि श्रीभगवान में श्रद्धा रखेंगे तो श्रीभगवान भी वही करने के लिए बाध्य हो जाते हैं, जो आप कहते हैं।

कूटस्थ का अर्थ है स्थिर। जैसे पर्वत का शिखर कभी भी हिलता-डुलता नहीं है। एवरेस्ट पर्वत जब से उत्पन्न हुआ है, तब से वहीं स्थिर खड़ा है।

श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे जो शान्त मन के योगी हैं, उनका अपनी इन्द्रियों पर विजय भाव इतना प्रखर होता है कि वे कठिन समय में भी पर्वत के शिखर की भाँति अडिग रहते हैं।

6.9

सुहृन्मित्रार्युदासीन, मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु, समबुद्धिर्विशिष्यते॥9॥

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और सम्बन्धियों में तथा साधु आचरण करने वालों में (और) पाप आचरण करने वालों में भी समबुद्धि वाला मनुष्य श्रेष्ठ है।

विवेचन- यहाँ **सुहृद** का अर्थ है बिना किसी शर्त के स्नेह करना।

जैसे हमारे माता-पिता हमसे बिना शर्त स्नेह करते हैं। वैसे तो हमें कभी भी गलत बातें नहीं बोलनी चाहिए, फिर भी यदि कभी हम रूठ गए और कुछ गलत बातें बोल दीं, तब भी हमारे माता-पिता का हमसे प्रेम कभी कम नहीं होता।

यदि परीक्षा में हमारे अङ्क थोड़े कम-अधिक आ गये तो वे हमारे भले के लिए हमें कुछ बोल देंगे परन्तु उनका प्रेम हमसे कभी कम नहीं होता।
इसी प्रकार श्रीभगवान भी हमारे लिए सुहृद हैं। योगी भी सबके लिए सुहृद होते हैं। उनके साथ कोई चाहे जैसा व्यवहार करे, वे सबके लिए समान भाव रखते हैं।

अरि का अर्थ शत्रु होता है।

उदासीन का अर्थ है तटस्थ, अर्थात् उसे किसी बात से कोई सरोकार या मतलब नहीं होता।

द्वेष् का अर्थ है- संसार में जो बुरे व्यक्ति होते हैं, जिनसे द्वेष करना चाहिए, जिनसे प्रेम करना बहुत कठिन है। फिर सामने साधु आ जाये या पापी व्यक्ति आ जाये, ऐसे सभी व्यक्तियों के विषय में भी योगी पुरुष के मन में समान भावना रहती है। अगर हमने यह जान लिया कि सभी प्राणी श्रीभगवान के ही रूप हैं, तो समान भावना ही रहेगी।

हमें लगता है कि यह तो थोड़े भ्रम (confusion) में डालने वाली बात है। "हमारे सामने शत्रु आ जाए या मित्र आ जाये, साधु आ जाये या पापी आ जाये, मैं उनके लिए समान दृष्टि रखूँगा?" श्रीभगवान यह क्या बोल रहे हैं? ऐसा बोलने के बाद श्रीभगवान यह भी कह रहे हैं कि "अर्जुन! युद्ध तो करना है।"अब युद्ध करना है तो शत्रु-भाव से भी नहीं करना है। उन्हें समान रूप से भी देखना है। श्रीभगवान यह क्या कह रहे हैं?

यहाँ आदिगुरु शङ्कराचार्य जी हमें यह बात थोड़ी स्पष्टता से बताते हैं।

अन्तरात्मा से तो हमें यह पता ही है कि सारे जीवों में श्रीभगवान का ही वास है। यदि कोई व्यक्ति गलत कार्य कर रहा है तो उसके गलत कार्य के लिए उसे दण्ड देना धर्म के अनुसार सही है। जैसे, अगर कोई चोरी कर रहा है तो हम जाकर उसे दण्ड नहीं दे सकते, परन्तु अर्जुन क्षत्रिय हैं, यह उनका धर्म है अत: सही है।

जैसे हमारे देश के सैनिक सीमा पर लड़ रहे हैं। उनके पास बन्दूक (gun) है तो वह उनका धर्म है, परन्तु अगर हमने अपने हाथ में बन्दूक ले ली, तो वह गलत होगा। हमारे धर्म में यह नहीं लिखा है कि आपको बन्दूक हाथ में लेनी है।

श्रीभगवान कह रहे हैं कि यदि आप सैनिक हैं तो देश की रक्षा की भावना से युद्ध करिए। सामने वाले व्यक्ति के लिए शत्रु-भाव रख कर युद्ध नहीं करिए।

दुर्योधन गलत काम कर रहा है, इसीलिए दुर्योधन से युद्ध करना है। कौरव अधर्म के साथ हैं, इसीलिए उनसे युद्ध करना है, इसलिए नहीं कि उनसे कोई निजी द्वेष है। पाण्डवों के मन में किसी भी कौरव के लिए निजी द्वेष नहीं है।

रामजी की कथा हमने सुनी है कि रावण का वध करने के बाद जब विभीषण ने कहा कि मैं रावण का अन्तिम संस्कार नहीं करूँगा, मैं इसे अपना भाई नहीं मानता हूँ। तब श्रीराम जी ने कहा कि उसकी मृत्यु हो गयी, द्वेष समाप्त हो गया। सब ईश्वर के ही रूप हैं। अगर तुम इसे अपना भाई नहीं मानते, तब इसे मेरा अर्थात् श्रीराम का भाई मानकर अन्तिम संस्कार करो।

श्रीभगवान कह रहे हैं कि हमें अन्तरात्मा से यह जान लेना है कि सभी में एक ही परमात्मा का स्वरूप है परन्तु जिसके जैसे कार्य हैं, उसके अनुरूप व्यवहार बदल सकता है।

6.10

योगी युञ्जीत सततम्, आत्मानं(म्) रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा, निराशीरपरिग्रहः॥10॥

भोग बुद्धि से संग्रह न करने वाला, इच्छा रहित (और) अन्तःकरण तथा शरीर को वश में रखने वाला योगी अकेला एकान्त में स्थित होकर मन को निरन्तर (परमात्मा में) लगाये।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान कह रहे हैं कि "**योगी हर क्षण अपनी आत्मा अर्थात् परमात्मा के चिन्तन में स्थिर रहते हैं।"**

स्थिर रहने का अर्थ है कि उनसे जिन कार्यों की अपेक्षा होती है, वे वह सारे कार्य करते रहेंगे परन्तु हर समय श्रीभगवान का ही चिन्तन करेंगे।

महाराष्ट्र में एक बहुत महान सन्त हुये हैं जिनका नाम सन्त सावता माली है। वे माली थे, अर्थात् वे बाग-बागीचों की देखभाल करते थे। एक बार उनकी छोटी सी पुत्री ने उनसे पूछा कि "क्या हम पण्ढरपुर में वारी के लिए नहीं जा रहे?" पण्ढरपुर एक स्थान है जहाँ सारे सन्त प्रतिवर्ष वारी के लिए जाते हैं।

वारी का अर्थ है- आशाढ़ी एकादशी के एक काल में सभी सन्त श्रीभगवान विट्ठल के दर्शन के लिए जाते हैं।

अपनी पुत्री के प्रश्न पर उन्होंने कहा कि "नहीं बेटा, इस बार हम नहीं जा रहे हैं क्योंकि हमारे बागीचे को हमारी आवश्यकता है।"उनकी पुत्री ने कहा कि "तो क्या हुआ? बागीचा हमारा ही तो है।"उन्होंने कहा कि "नहीं! उस बागीचे के मालिक पण्ढरपुर में बैठे हैं। अगर हम इस समय बागीचे को छोड़कर चले जाएँगे तो उनका बागीचा खराब हो जाएगा।"

उनकी पुत्री ने फिर पूछा कि "ये मालिक कौन हैं जो हमें वारी के लिए जाने हेतु छुट्टी भी नहीं दे रहे? वे स्वयं पण्ढरपुर में रहते हैं और विट्ठल भगवानजी के दर्शन कर लेते हैं और हम एक बार जाना चाहते हैं तो वे छुट्टी नहीं दे रहे?"सन्त ने कहा कि "बिटिया! ये वही मालिक हैं, जिनके दर्शन करने के लिए हम जा रहे हैं।"इस प्रकार सावता माली अपने बागीचे में श्रीभगवान विट्ठल का दर्शन करते थे।

योगी का केवल यह अर्थ नहीं है कि एक स्थान पर योग में बैठे रहें। योगी का अर्थ है कि हम जो भी काम कर रहे हैं, उसी को पूरे ध्यान से करना, उसी में श्रीभगवान का रूप देखना।

ज्ञानेश्वर मावली कहते हैं कर्म में ईश भजा। कर्म में श्रीभगवान का रूप देखकर उस कर्म को करना।

आगे श्रीभगवान कहते हैं कि **"बिना कारण अनावश्यक वस्तुओं का सञ्चय न करना भी योगी के लक्षण हैं।"**

इस प्रकार श्रीभगवान ने इन श्लोकों में हमें योगी के वर्तन, उनकी मनःस्थिति के विषय में बताया।

एक योगी की मानसिक स्थिति के विषय में एक सुन्दर प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण में आता है-

एक बार हनुमानजी को सीता मैया ने एक बहुत सुन्दर मोतियों की माला दी। हनुमानजी ने वह माला ली। उसका एक मोती उठाया और उसे तोड़ कर फेंक दिया। फिर दूसरा मोती उठाया और उसे भी तोड़ कर फेंक दिया। सीता मैया ने कहा कि "अरे! इस माला का एक-एक मोती बहुत मूल्यवान है। आप इन्हें तोड़ कर क्यों फेंक रहे हैं?"

हनुमानजी ने कहा कि "इनमें मुझे श्रीभगवान के दर्शन नहीं हो रहे हैं। मेरे रामजी इसमें नहीं हैं।"माता ने कहा कि "क्या आपमें स्वयं में रामजी हैं?"
हनुमानजी ने तुरन्त अपना सीना फाड़कर सीता मैया को रामजी के दर्शन करवा दिये और बोले कि "हाँ! मुझमें स्वयं में रामजी हैं, इसलिए मुझे हर स्थान पर रामजी ही चाहिएं।"

सात्त्विकता का अर्थ है कि यदि मेरा कोई कार्य मुझे श्रीभगवान के पास नहीं ले जा रहा है तो वह कार्य मुझे नहीं करना चाहिए।

इन्द्रियों पर संयम पाने का मूल यही है।

रामजी हनुमानजी से पूछते थे कि "हनुमान तुम कौन हो?"
तब हनुमानजी कहते थे-

"देहबुद्ध्या तु दासोऽस्मि जीवबुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥"
अर्थात् "देहबुद्धि से मैं आपका दास हूँ। जीवबुद्धि से मैं आपका अंश हूँ। आत्मबुद्धि से मैं आप ही हूँ। यदि अन्तरात्मा की बुद्धि से देखूँ तो मुझमें और आपमें कोई अन्तर नहीं है, यही मेरी निश्चित मति है।"

योगी की मनोस्थिति हमें प्राप्त करनी है और हम सब यह प्राप्त कर भी सकते हैं।

रामसुख दास जी महाराज ने एक बार अपने प्रवचन में कहा था, "इस कक्ष में जो भी बैठे हैं, वे मोक्ष की प्राप्ति करने वाले हैं।"सभी प्रसन्न हो गए। सभी को श्रीभगवान मिलने वाले हैं। कब मिलेंगे? वह पता नहीं। हम सब अपनी गति अनुसार इस योगी के पद तक पहुँच सकते हैं।

हम योग के मार्ग पर अग्रसर हो चुके हैं। हम भी गीताजी पढ़ रहे हैं और धीरे-धीरे उस स्थिति तक पहुँच रहे हैं।

हम भी यह कह सकते हैं **आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहम।**

हम भी धीरे-धीरे साधना करते रहेंगे। प्रतिदिन कक्षा में उपस्थित होते रहेंगे, विवेचन सुनेंगे, गीता पारायण करेंगे।

श्रीभगवान आगे के श्लोकों में बताएँगे कि योगी बनने के लिए क्या करना चाहिए? इसके विषय में हम अगले सत्र में चिन्तन करेंगे। हमें ध्यान कैसे करना चाहिए? हमें कैसे बैठना चाहिए? हमारा आसन, हमारा स्थान कैसा हो? कहाँ बैठ कर करें? कैसे करें?

इन सब बातों के विषय में श्रीभगवान आगे के श्लोकों में बताने वाले हैं।

भगवन्नाम सङ्कीर्तन"हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम्" के साथ विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्न-उत्तर प्रारम्भ हुए।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - अदिति दीदी
प्रश्न - क्या आप मुझे तीसरे श्लोक का अर्थ दोबारा समझा देंगे?
उत्तर - तीसरा श्लोक है
"**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं(ङ्), कर्म कारणमुच्यते।**
योगारूढस्य तस्यैव, शमः(ख्) कारणमुच्यते॥६.३॥"

इस श्लोक में श्रीभगवान ने योगी की दो विशेषताएँ बताई हैं : आरुरुक्ष और योगारूढ़।

व्यक्ति के मन में इच्छा होनी चाहिए कि मुझे कुछ अच्छा कार्य करना है। मुझे अपने जीवन में प्रगति लानी है। जब यह इच्छा मन में हो जाती है और इसे पूर्ण करने के लिए हम कर्म करना शुरू करते हैं तो उसे श्रीभगवान **आरुरुक्ष** कहते हैं। उसके

अनुसार जो कर्म करते हैं उसे **योगारूढ़** कहते हैं। जिस प्रकार एक अश्व पर बैठे हुए व्यक्ति को अश्वारूढ़ कहते हैं, उसी प्रकार योग में स्थित हुए व्यक्ति को योगारूढ़ कहते हैं।

प्रश्नकर्ता - अदिति दीदी
प्रश्न - छठवें श्लोक में शत्रुवत् का क्या अर्थ है? धर्म और कर्म में क्या अन्तर होता है?
उत्तर - शत्रुवत् का अर्थ है मन में किसी के लिए शत्रुत्व की भावना होना।
जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों के पीछे ही भागता रहता है और अपने मन की बात नहीं सुनता, वह व्यक्ति स्वयं के लिए ही शत्रु बन जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि वह स्वयं के लिए ही शत्रुता का व्यवहार करता है

हम जो भी कार्य करते हैं, वह हमारा कर्म है। धर्म का अर्थ है कि हमें क्या करना चाहिए। जैसे अभी हम विद्यार्थी हैं तो हमारा धर्म पढ़ाई करना है।
यहाँ पर धर्म का अर्थ किसी सम्प्रदाय से नहीं है। अपने शरीर का ध्यान रखना, अच्छा पौष्टिक भोजन करना, सबके साथ अच्छा व्यवहार करना, बहुत सारी पुस्तक पढ़ना यह हमारा धर्म है।

हम किसी की पुत्री हैं तो हमारे पुत्री के धर्म हो जाते हैं।
कोई किसी का पुत्र है तो उसका पुत्र धर्म होता है।
कोई हमारा पड़ोसी है तो हमारा पड़ोसी धर्म है।
धर्म का अर्थ है कि हमारा कर्त्तव्य क्या है?
हम जिस स्थिति में हैं, उस स्थिति में हमें जो कर्म करना चाहिए, जो हमारा कर्त्तव्य है, वही हमारा धर्म है।

प्रश्नकर्ता- रिया दीदी
प्रश्न - आपने कहा था कि हमें और हमारे माता-पिता को हमारे परीक्षा परिणाम के लिए बहुत अधिक चिन्तित नहीं होना चाहिए पर चिन्ता छोड़ने के लिए हम क्या करें?
उत्तर - मान लीजिए आज आपका विज्ञान का पेपर है तो आप आज तक ही अपनी विज्ञान की पढ़ाई करेंगी। परीक्षा देने के बाद तो पढ़ने का कोई मतलब नहीं है। उसके बाद तो शान्त हो जाना चाहिए। अब आप चाहे चिन्ता करें, चाहे और पढ़ाई करें। अब आपका परिणाम तो बदलने वाला नहीं है। ऐसी स्थिति में शान्त हो जाना चाहिए। कर्म करने की भी एक सीमा होती है, जहाँ तक हम कर्म कर सकते हैं।

कभी कोई व्यक्ति बहुत बीमार हो जाता है। उसे अस्पताल में रखना पड़ता है। डॉक्टर भी बोल देते हैं कि हमने अपना पूरा प्रयास कर लिया है। उसके आगे अब हम कुछ नहीं कर सकते। मरीज का ठीक होना, न होना अब हमारे हाथ में नहीं है। हमसे जो बन पड़ता है, वह हमें सब कुछ करना चाहिए। एक स्टेज ऐसी आनी चाहिए कि हम सोच लें कि अब इसके बाद मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ। अब मुझे शान्त हो जाना चाहिए।
कई बार होता है कि हम अन्त तक बहुत अधिक विचल, विकल रहते हैं। इससे स्वयं को ही बहुत पीड़ा होती है, जिसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे हमने आदरणीय मोदी जी का भी उदाहरण लिया था कि जब चुनाव हुए तो वह बेहद परेशान हो सकते थे कि अब क्या होगा? पर वे चिन्तित नहीं रहते हैं। उन्हें पता है कि मैंने अपना कर्म कर लिया है। अब जो भी होगा और जो भी परिणाम आएगा, वह भगवत कृपा के अनुसार और कर्म के अनुसार आएगा। हमें भी ऐसा ही सोचना है और परिणाम आने तक हमेशा अपने मन को शान्त रखना है।

इस के उपरान्त श्रीहनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||